ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा

डा० इन्दिरा कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुज.
C/o डा० अजय कुमार
जायसवाल कैम्पस
(स्वास्तिक हॉस्पीटल के सामने)
कलमबाग चौक, मुजफ्फरपुर–842002
मोबाईल नं.–9771033151
ई–मेल : ajaykumarbas@gmail.com

शोध सारांश

नागार्जुन मानवतावादी विचारों से प्रेरित रचनाकार के रूप में स्थापित हैं। मानव समुदाय के मंगल की कामना उनके साहित्य सृजन के मूल में रही है। साहित्य को सामाजिक–आर्थिक विकास के कारगर साधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने के उद्देश्य से उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन का कार्य किया। उनके उपन्यासों की रचना के मूल में भी यही भावना प्रबल रही है। सोद्देश्य रचनाओं में कथ्य की प्रधानता निर्विवाद है। नागार्जुन ने स्वयं स्वीकार किया था कि उनका साहित्य कथ्य को ध्यान में रखकर सृजित है। अपने उपन्यासों के माध्यम से भी उन्होंने अभीष्ट कथ्यों का प्रतिपादन किया है। सोद्देश्य साहित्य सृजन की सफलता बहुत कुछ उसकी सम्प्रेषणीयता पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यासों में परिनिष्ठित और लोकभाषा के घाल मेल से निर्मित एक ऐसी नयी भाषा प्रयोग में लायी गयी है, जिसमें देवभाषा संस्कृत के गंभीर श्लोकों के साथ ही लोकभाषा के कोमल पद भी है। तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ देशज, विदेशज और बोलचाल में प्रयुक्त, किन्तु, साहित्य में प्रायः अप्रचलित ढेढ गँवई शब्द और यहाँ तक कि –अवशब्द माने जाने वाले शब्द भी प्रयुक्त हैं। हास्य, व्यंग्य, प्रतीक और बिम्बों का विधान भी दिख जाता है और सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह कि भाषा कथ्य को लक्षित समूह तक सम्प्रेषित करने में सक्षम और सफल है।

मुख्य शब्द – मानव समुदाय, मानवतावादी, मंगल कामना, साहित्य सुजन, सोद्देश्य रचना, सम्प्रेषणीयता, परिनिष्ठित, देवभाषा संस्कृत, लोकभाषा, कथ्य, लक्षित समूह

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। किन्तु, भाषा की बात जब साहित्य के सन्दर्भ में की जाती है तो यह अभिव्यक्ति के माध्यम से आगे बढ़कर सम्प्रेषण के साधन के रूप में अधिक विचारणीय बन जाती है। साहित्य की भाषा की यह सम्प्रेषणीयता भी दो स्तरों पर देखी–परखी जाती है। पहला विषय–वस्तु के यथार्थ चित्रण और दूसरा उसकी बोधगम्यता से संबंधित है। नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा की पड़ताल करने के क्रम में नागार्जुन की उस स्वीकारोक्ति को ध्यान में रखना समीचीन होगा जिसमें उन्होंने कथ्य को केन्द्र में रखकर साहित्य लेखन की बात स्वीकार की थी। जाहिर है कथ्य को केन्द्र में रखकर की जानेवाली रचना सोद्देश्य थी और उद्देश्य था समतामूलक, समताद्योतक एवं आर्थिक समृद्धि की ओर अग्रसर समाज के निर्माण में साहित्य सृजन के माध्यम से योगदान देना। लक्षित समाज वह समाज था जहाँ वे पैदा हुए थे और दीर्घ जीवन के अनेक वर्ष जहाँ व्यतीत हुए थे। इसके अतिरिक्त, वह समाज भी जहाँ उन्होंने अपनी यायावरी के दिन व्यतीत किए थे। समाज जो मुख्यतः ग्रामीण था, जहाँ की अधिसंख्य जनसंख्या, विशेषकर आधी आबादी भेदभावपूर्ण सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था से त्रस्त थी। समाज जिसके पैरों में अशिक्षा, अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियाँ पड़ी थीं। ऐसे समाज में परिवर्तन के साधन रूप में साहित्य को आजमाने की स्वाभाविक शर्त्त थी साहित्य की भाषा को बड़े लक्षित समूह के लिए सहज बोधगम्य बनाए रखने की। विषय वस्तु अथवा कथ्य को यथार्थ बनाए रखना भी अनिवार्य ही था। ताकि, लक्षित समूह उसके साथ अपना लगाव–जुड़ाव अनुभव कर सके। ऐसा करने के लिए भाषा का स्वरूप पात्रोचित तथा परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप रखा जाना आवश्यक था।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में नागार्जुन के उपन्यासों के पात्रों की भाषा की पड़ताल करने के क्रम में भाषा के कई रूप दिखाई पड़ते हैं। जय किशोर, फूल बाबू, राधा बाबू, दिगम्बर, दुखमोचन, राय साहब कपिल, सदानंद जैसे पुरुष पात्रों की भाषा और रंजना, इन्दिरा उर्फ भुवन, नर्मदेश्वर की भाभी, माया, जैसे नारी पात्रों की भाषा सरल परिनिष्ठित है। हाँ, पेशा, परिवेश एवं स्वभाव के कारण उत्पन्न भिन्नता इनकी भाषा में भी द्रष्टव्य है। संस्कृत शिक्षक जय किशोर के आत्म–चिंतन की भाषा –

''मनुष्य जब प्राप्तव्य पा जाता है, तब उसकी दृष्टि आगे की ओर इतनी तेजी से क्यों फिसलती है?''[1]

वर्षों कलकत्ते में रहकर लौटे दुखमोचन की भाषा देखिए–

''चाचा, लन्दन में आजकल बड़ी अशांति है। जहाजी मजदूर हजारों की तादाद में हड़ताल करनेवाले हैं, समूचा शहर उनका साथ देगा ..... चक्रपाणि का खत–वत आया है न?''[2]

परम्परागत किन्तु, आधी आबादी के आर्थिक स्वावलम्बन एवं विकास में उनकी सहभागिता के हिमायती राय साहब कहते हैं –

'बस बस यही आत्म विश्ववास मैं स्त्रियों में देखना चाहता हूँ चंपा। हम बड़ी जातवालों ने महिलाओं को पंगु बना रखा है ..... कॉलेज से निकलते ही लड़कियाँ बहू बन जाएं और लेटी–बैठी सारा दिन उपन्यास पढ़ती रहें, रेडियो सुनती रहें तो यह आत्म विश्वास कहाँ से आएगा?''[3]

किस्सागाई के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाने के दौरान रचनाकार की भाषा भी प्रायः उपर्युक्त पात्रों की भाषा से मिलती–जुलती ही रहती है। हाँ, प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन जैसी स्थिति में भाषा तत्सम शब्दों और सहज स्वाभाविक अलंकार से युक्त हो जाती है–

''आगे खेतों में धान के हरे–हरे पौधे लहरा रहे थे। उनसे परे आमों के नील–निविड़ कुंज थे। उनसे भी परे सुदूर उत्तरी आकाश में हिमालय की धवल–धूमिल चोटियाँ थीं जो उगते सूरज की पीली किरणों से उद्‌भाषित होकर स्वर्ण–श्रृंग सी लग रही थीं।''[4]

कुल्ली राउत, बलचनमा, बच्चू, बाबा बटेसरनाथ, जैकिसुन, मंगल, मोहन मांझी, मस्तराम और गरीबदास जैसे पुरुष पात्र और गौरी, विसेसरी, मधुरी, निर्मला, उगनी, इमरितिया जैसे नारी पात्रों की भाषा लोक प्रचलित बोलचाल की भाषा है जिसमें शब्दों के अप्रभंश एवं विपर्यय जनित रूपों की भरमार है। अनुभव एवं व्यावहारिक ज्ञान के बूते आंदोलन की बात करने वाले बलचनमा की भाषा की बानगी द्रष्टव्य है–

''मझले मालिक और बल्ली बाबू ने इसको अपने खिलाफ आंदोलन का ओनामासीधं समझा।''[5]

महापंडित खोखा पंडित की नतनी; किन्तु, औपचारिक शिक्षा से वंचित बिसेसरी की भाषा भी इसी तरह की है–

'सोराज हुआ होगा दिल्ली और पटना में यहाँ जो ग्राम सरकार कायम हुई है, उसके एगारह ठो मेम्बर हैं। जनानी एक्को गो है बूलो?''[5]

औपचारिक शिक्षा से महरूम इन पात्रों की भाषा का विकृतिकरण स्वाभाविकता की मांग के मद्देनजर किया गया है। हालांकि, इस दौरान कई ऐसे शब्द अथवा पद दिखाई पड़ जाते हैं जो इन पात्रों के बौद्धिक स्तर को देखते हुए स्वभाविक कम और आरोपित अधिक दिखाई पड़ते हैं। इन पात्रों के बीच भी बलचनमा, बच्चू, मोहन मांझी, गरीब दास जैसे पात्र हैं जिनका सामाजिक और बौद्धिक स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा है। यह अंतर जो संगत और सम्पर्कों से उपजा है, उनकी भाषा में भी परिलक्षित होता है। मोहन मांझी की भाषा देखिए –

''भोला घबड़ाने की कोई बात नहीं। देपुरा के जमींदारों ने बंदोबस्ती का जो पट्‌टा तुम्हें लिखकर दिया था, वह कागज घर से लेते आओ। हम आगे चलकर अफसरों से बातें करते हैं।''[7]

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

नागार्जुन के उपन्यास में सिपाही भभीखन सिंह जैसे कम पढ़े–लिखे लोगों की भाषा भी अपभ्रष्ट शब्दों से युक्त हैं; फिर भी इनके उच्च सामाजिक एवं मानसिक स्तर का संकेत देती दिखाई पड़ती है। मस्तराम, बाबा एवं इमरितिया जैसे पात्रों की भाषा में मठ–मंदिरों के जीवन का पुट दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि कथावस्तु को पात्रोचित विश्वसनीयता प्रदान करने के उद्देश्य से उपन्यासकार ने भाषा वैविध्य के लगभग सभी कारकों; यथा – सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि, शिक्षा–दीक्षा, परिवेश, परिस्थिति आदि का बड़ा सूक्ष्म एवं स्वाभाविक उपयोग किया है। पात्रों का यह भाषा वैविध्य प्रत्येक पात्र को विशिष्ट पहचान देने और उनकी संवेदनाओं एवं मनोभावों को पाठकों तक पहुँचाने में अदभुत रूप से कारगर हुआ है।

भाव पक्ष को केन्द्र में रखकर लिखे गए नागार्जुन के उपन्यासों में रचनाकार का फोकस कथ्य को यथार्थ एवं सहज बोधगम्य बनाए रखने पर रहा है। किन्तु, उपन्यास लेखन कला की बारीकियां भी उपन्यासों में यत्र–तत्र दिखाई पड़ती है।

कथा वस्तु को बोझिल बनने से बचाने हेतु रचनाकार ने अनेक स्थलों पर पद्यात्मकता का सहारा लिया है। ये पद पात्रों के व्यक्तित्व एवं मनोभावों को प्रकट करते और कथानक को गति देते चलते हैं। पाठक भी एक नयी रोचकता का अनुभव करता है। खोखा पंडित का व्यक्तित्व वर्णन रचनाकार ने इस प्रकार किया है–

''खोखा पंडित बड़े सयाने
.....
.....
करम न इनसे छूटा कोई
.....
रात बता देंगे यह दिन को
चूड़ा–दही खिलाओ इनको
.....
सूना पावें गला काट ले
बड़े घाघ हैं पंडित खोंखा
ईसर को भी देते धोखा''[8]

इसी तरह, पिता की अकाल मृत्यु के कारण उत्पन्न प्रतिकूल सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में एक किशोर वय बाला पारो की प्रौढ मानसिक स्थिति का वर्णन उपन्यासकार ने बोलचाल की भाषा एवं पद्यात्मक शैली में निम्न प्रकार किया है –

''सखि हम करमक हीन

कोन विधिखेपव दीन

.....

कोन विधि काटबकाल

हैत हमर की हाल।''

व्यंग्य न सिर्फ कथ्य के पैनापन को बढ़ाते हैं, अपितु, हास्य रस का संचार कर पाठकों में कथानक की सपाटता एवं किस्सागोई से उत्पन्न नीरसता एवं एकरसता को खत्म करने में कारगर होते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों के जयनाथ, भोला पंडित, खोखा पंडित जैसे अकर्मण्य, सामाजिक कुरीतियों के वाहक–समर्थक एवं पाखंडी पात्रों को रचनाकार के तीखे व्यंग्यवाणों का सामना करना पड़ा है। एक ऐसे ही पात्र भोला पंडित के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय उपन्यासकार ने इस प्रकार दिया है–

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

''असमर्थ व्यक्तियों के प्रति इस ब्राह्मण के हृदय में असीम करूणा थी। कितने ही लूले, लँगड़े, अंधे, अपाहिज और बूढ़े भोला पंडित की कृपा से अधखिली कलियों– जैसी बालिकाओं को गृहलक्ष्मी के रूप में पाकर निकाल हो गए। एक–एक ब्याह में पचास–पचास रूप्ए पंडित के बँधे हुए थे। ..... । पचीसों लड़कियों जिसके नाम पर रात–दिन आँसू बहाएँ, उसका भला कैसे होगा? दस–पाँच लड़कों को भी ठगने में पंडित ने सफलता पाई थी। किसी के पल्ले गूँगी पड़ी तो ..... किसी के पल्ले कूबड़ी।

परंतु इससे क्या? बाबा वैद्यनाथ प्रसन्न रहें, पंडित का कौन क्या कर लेगा? वह साल–साल कंधे पर कामरू लेकर गंगाजल भरकर पैदल ही देवघर पहुँचता है .....। कौन है ऐसा शुभंकरपुर में?''[10]

कथावस्तु को अतिरिक्त गतिशीलता देने के उद्देश्य से क्रिया पदों से रहित छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग भी इनके उपन्यासों में जगह–जगह देखा जा सकता है। ये छोटे वाक्य रेडियो कमेंट्री की तरह कथावस्तु को समस्त गतिशीलता और नाटकीयता के साथ दृश्यमान बना देने में सक्षम होते हैं। वानगी देखिए–

''गेहुआँ रंग! लंबा कद! फैला हुआ चेहरा! प्रशस्त ललाट। पतले होंठ। बड़ी–बड़ी आँखें। नाक जरा चिपटी। पन्द्रह–सोलह साल का तरूण। साफ धोती और नीली धारी वाली पीली कमीज पहने जब उसने उस विशाल आँगन में बेधड़क प्रवेश किया तो सूर्यास्त का समय था।''[11]

भाषा के माध्यम से ध्वनि–दृश्यात्मक विम्ब योजना और उपन्यास की भाषा को परिस्थिति और परिवेश की मांग के अनुसार ध्वन्यात्मक प्रभाव से परिपुष्ट करने का सफल प्रयास नागार्जुन के उपन्यासों में देखने को मिलता है। 'वरूण के बेटे' शीर्षक उपन्यास में शिकारमाही के प्रसंग में मछुआरों की सामूहिक श्रम शक्ति, आशा, उमंग और जोश के मनोभावों को उपन्यासकार ने निम्न ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति दी है–

– ऊपर टान,

– हुई यो!

.....

.....

ढील रस्सा

– हुई यो!

जाल संभाल

हुई यो

– हो ो ो ो शिया ा ा ा र .....''[12]

इस प्रकार, नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उनका भाषा संसार संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, खड़ी बोली और मैथिली से लेकर लोक मानस की ठेढ़–गँवई भाषा तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त, बंगला, गुजराती और पंजाबी भाषा में लेखन का सामर्थ्य भी उन्हें प्राप्त था। नागार्जुन के इस विस्तृत भाषा ज्ञान ने उनकी साहित्यिक भाषा को विविधतापूर्ण बनाया है। यही कारण है कि पात्र, परिस्थिति एवं कथानक की स्वाभाविक मांग के मद्देनजर कहीं उपन्यासकार ने तत्सम शब्दों से भी अलंकृत भाषा का प्रयोग किया है तो कहीं जनसाधारण के बीच बोलचाल में अपनायी जानेवाली सरल–सपाट भाषा का। एक ओर जहाँ संस्कृत के श्लोक पात्रों की भावाभिव्यक्ति का माध्यम बने हैं तो दूसरी ओर किरपिन, जास्ती, अजगुत, खटका, सरधा, नजीक, सोहारी, सरियाना, नाहक, भकौल जैसे अपभ्रंश शब्दों और 'मन उखड़ना', 'दीसा फिरना', 'भूख उड़ना', 'भूख सूखना', 'अगमकुआँ बनना', 'कीमत कूतना', 'प्राण पीना' जैसे अप्रचलित मुहावरों से युक्त भाषा का प्रयोग धड़ल्ले से मिलता है। ये शब्द और मुहावरे ऐसे हैं जो क्षेत्र विशेष के बाहर के लोगों के लिए सहज बोधगम्य नहीं है।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

किन्तु, यथार्थ के आग्रह और कथानक की मांग के मद्देनजर उपन्यासकार ने इनके प्रयोग से भी परहेज नहीं किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नागार्जुन साहित्य का मूल उत्स जनसाधारण और उनके सरोकार रहे हैं। साहित्य को लोक रंजन ही नहीं, अपितु, सामाजिक आर्थिक विकास के साधन रूप में प्रयुक्त करने के उद्देश्य से उन्होंने साहित्य सृजन किया। संभवतः इसी कारण कथ्य को ध्यान में रखकर साहित्य सृजन की बात उपन्यासकार ने स्वयं स्वीकार किया था। कथ्य की प्रभावोत्पादकता को अधिकाधिक बनाए रखने हेतु जब, जहाँ, जैसे पात्र और परिवेश का निर्माण उपयुक्त लगा, उन्होंने वैसा किया। जिन शब्दों और वाक्यों या शैली का प्रयोग सर्वाधिक उपयुक्त समझा उसे ही अपनाया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा न तो पूर्ण परिनिष्ठित हिन्दी है और न ही लोकभाषा। यह एक ऐसी भाषा है, जिसमें संस्कृत के गंभीर श्लोक गुंफित हैं तो लोकभाषा के मधुर पद्य भी। तत्सम, तद्भव, देसज और विदेशज शब्द हैं तो शब्दों के अपभ्रंश रूप, साहित्य में सर्वथा अप्रयुक्त ठेठ गँवई शब्द और यहाँ तक कि अपशब्द भी बड़ी संख्या में प्रयुक्त हैं। कुल मिलाकर नागार्जुन के उपन्यासों में भाषा का एक ऐसा रूप देखने को मिलता है जो कथ्य को लक्षित समूह तक सम्प्रेषित करने में सक्षम और काफी हद तक सफल है और संभवतः यही इसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. 'रतिनाथ की चाची', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–87
2. 'दुखमोचन', नागार्जुन रचनावली, भाग–5, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–32
3. 'कुंभीपाक', नागार्जुन रचनावली, भाग–5, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–208
4. 'रतिनाथ की चाची', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–87
5. 'बलचनमा', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–244
6. 'नई पौध', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–333
7. 'वरूण के बेटे', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–490
8. 'नई पौध', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–259
9. 'पारो' नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–534
10. 'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–58
11. 'रतिनाथ की चाची', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–58
12. 'वरूण के बेटे', नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2011, पृष्ठ सं०–486–87

Copyright @ 2020 Authors